भारतीय संविधान

अनकही कहानी

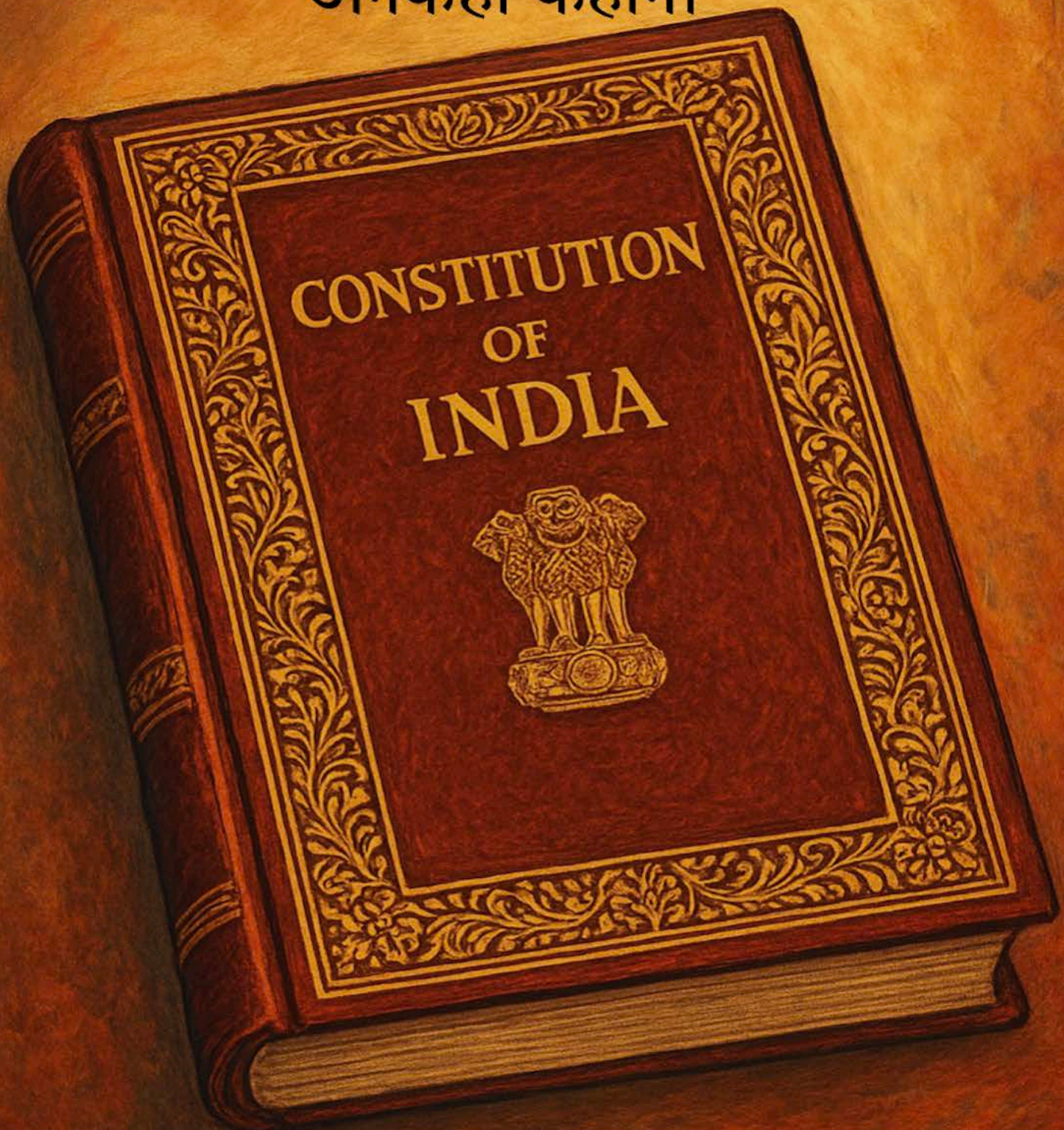

रामबहादुर राय

भारतीय संविधान

अनकही कहानी

रामबहादुर राय

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: अक्टूबर, 2025

© रामबहादुर राय

प्रतिष्ठित विधिवेत्ता

आत्मीय मित्र

श्री अरुण जेटली की स्मृति को

समर्पित

यह पुस्तक क्यों, कैसे और किसलिए ?

संविधान से परिचित था, लेकिन 'मीसा' में गिरफ्तारी ने मेरे मन में संविधान के प्रति उत्कंठा की तेज लौ जला दी। उस घटना ने मुझे संविधान का जिज्ञासु बना दिया। पटना के जिलाधिकारी ने मीसा (मेंटिनेंस ऑफ इंटरनल सिक्योरिटी ऐक्ट) के अधिकारों का दुरुपयोग कर सात आधारों पर गिरफ्तारी कराई। जिसे अंततः सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी गई। पटना के बाँकीपुर जेल में मीसाबंदी था। एक दिन डॉ. एन. एम. घटाटे और डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी आए। नानाजी देशमुख ने डॉ. एन.एम. घटाटे को सुप्रीम कोर्ट में याचिका डालने का कार्य सौंपा था। संविधान में मौलिक अधिकारों की धुरी पर उनसे बातचीत चक्कर लगा रही थी। वह एक नया अनुभव था। मेरी ओर से डॉ. घटाटे ने सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। वहाँ सुनवाई हुई। सुप्रीम कोर्ट ने मेरी गिरफ्तारी को असंवैधानिक ठहराया। 'किसी शांतिपूर्ण प्रतिरोधकर्ता को बंदी बनाना असंवैधानिक है।' मेरे लिए संवैधानिकता का वह पहला पाठ बना। न्यायाधीश वाई. वी. चंद्रचूड़ और पी. एन. भगवती की बेंच ने गिरफ्तारी के सात महीने बाद 12 नवंबर, 1974 को निर्णय सुनाया। जिससे मेरी रिहाई हुई, नहीं तो 8 अप्रैल, 1975 तक मुझे जेल में रहना होता। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को समझाने वाला वह एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है, जिसमें महात्मा गांधी और मार्टिन लूथर किंग के गौरवशाली सत्याग्रह

का संदर्भ है। उस निर्णय के बारे में पटना के ऐतिहासिक गांधी मैदान की एक बड़ी सभा में लोकनायक जयप्रकाश नारायण (जे.पी.) ने 18 नवंबर, 1974 के अपने भाषण में इस तरह उल्लेख किया, 'अभी रामबहादुर रायजी का मुकदमा गया। रामबहादुर रायजी ऑल इंडिया विद्यार्थी परिषद् के एक मंत्री, गिरफ्तार हुए और उनका फैसला हुआ सुप्रीम कोर्ट में सुप्रीम कोर्ट ने क्या जजमेंट दिया है कि भाई शांतिमय प्रदर्शन करना, शांतिमय धरना देना, उसके लिए तैयारी करना ये गैर-कानूनी नहीं हैं। यह 'मीसा' में नहीं आता है।' भूदान यज्ञ (पूर्ति विभाग) प्रकाशन 19, राजघाट कॉलोनी, नई दिल्ली की पुस्तिका 'सिंहासन खाली करो' में यह छपा है। उस सभा की अध्यक्षता कवि बाबा नागार्जुन कर रहे थे।

उन्हीं दिनों जे.पी. की एक पुस्तिका पढ़ी। जिसका शीर्षक 'भारतीय राज्य-व्यवस्था की पुनर्रचना : एक सुझाव' था। जिसमें उन्होंने पहली बार संविधान समीक्षा का सुझाव दिया। यह 1959 की बात है। जिस पर बड़ी बहस छिड़ी। उसकी आलोचना भी हुई। 'कुछ आलोचकों ने यह आक्षेप किया था कि भारतीय लोकतंत्र का पौधा अभी अंकुरित ही हो रहा है, इसलिए उसे छेड़ना ठीक नहीं है। यहाँ तक कहा गया था कि 'जे. पी. लोकतंत्र के शत्रु हैं और लोकतंत्र को वास्तविक बनाने की आड़ में इसे कमजोर करना चाहते हैं।' वास्तव में जे. पी. ने संसदीय प्रणाली की सीमाओं को पहचाना। उसे ही अधिक ठोस आधार देने के लिए उन्होंने वह लेख सुझाव के रूप में लिखा था। जिसमें मूल दृष्टि जो थी, वह समयसिद्ध है। उस लेख में जे.पी. ने यह बात कही थी कि लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति साधारण नागरिक है। लोकतंत्र को शक्तिशाली और व्यापक बनाने के लिए जरूरी है कि नागरिक की

हर स्तर पर सहभागिता हो। बहुत बाद में उस लेख को जे. पी. ने व्यवस्थित किया। अपने अनुभव उसमें और उड़ेले। जिसे 'लोक स्वराज्य' शीर्षक से 'सर्वसेवा संघ' ने छापा। उसके 1999 तक 7 संस्करण निकले। कुल 26 हजार प्रतियाँ छपीं। प्रयोजन यह था कि जे. पी. के उस लेख से लोक शिक्षणका क्रम चले। 'लोक स्वराज्य' 45 पृष्ठों की पुस्तिका है। इसके पहले ही अध्याय में जे. पी. लिखते हैं— 'भारत की संविधान-सभा ने जनता के नाम पर संकल्प किया-

1. भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न गणराज्य बनाना।
2. भारत के सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास - निष्ठा और पूजा की स्वतंत्रता, सामाजिक स्तर और अवसर की समानता सुलभ करना, और
3. व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता के आश्वासन के साथ भारत के सभी नागरिकों में भ्रातृत्व की भावनाओं का प्रसार करना।'

'ये लक्ष्य और उद्देश्य निश्चय ही लोकतंत्र को प्रेरणात्मक और चुनौतीमूलक स्वरूप प्रदान करते हैं। इस स्वरूप को ठोस वास्तविकता में परिणत करने में मदद देने के लिए संविधान सभा ने भारत का वर्तमान संविधान स्वीकृत किया, जो समय-समय पर संशोधित किए जाने के बावजूद स्वतंत्रता और लोकतंत्र के दुर्ग के रूप में स्थित है।' 'भारत की जनता को ठीक ही इस बात पर गर्व हो सकता है कि पड़ोस के देशों में एक न एक प्रकार की तानाशाही को अंगीकार किए जाने के उदाहरण के बाद भी उसने समझ-बूझकर लोकतंत्रीय

जीवन-पद्धति को पसंद किया। यह उसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रौढ़ता का द्योतक है।' 'इतना सब मानते हुए भी यह उचित है कि पिछले दस साल की अवधि के अपने लोकतंत्रीय अनुभव का लेखा-जोखा किया जाए। यह लेखा-जोखा हमें एशिया और अफ्रीका के अन्य देशों और पश्चिम के पुष्ट लोकतंत्रों के अनुभवों की पृष्ठभूमि में करना होगा।'

यह कहना कठिन है कि उस सुझाव का प्रभाव था या राजनीतिक व्यवस्था की संवैधानिक विसंगतियाँ थीं, जिससे संविधान पर प्रश्न उठने लगे। आज यह बात विचित्र सी लगेगी, लेकिन तथ्य जो है, वह अकाट्य है । इस तथ्य का उल्लेख डॉ. सुभाष काश्यप ने 'कॉन्स्टीट्यूशन मेकिंग सिंस 1950, ऐन ओवर व्यू' में किया है। संविधान के चौथे संशोधन विधेयक पर बोलते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा, 'आखिरकार संविधान की सार्थकता इसमें ही है कि उससे सरकार, प्रशासन और समाज में लोकोपयोगी कार्य करना सहज ही संभव होता रहे।' यह कथन दो अर्थों वाला है। इसमें संविधान पर स्वयं प्रधानमंत्री पं. नेहरू अपने अनुभव से सामयिक प्रश्न उठा रहे हैं। दूसरा अर्थ भी देखें तो यह कह सकते हैं कि संविधान संशोधन का वे औचित्य इन शब्दों में प्रतिपादित कर रहे हैं। इससे यह बात भी निकलती है कि संविधान पर सिर्फ उसके आलोचक ही प्रश्न तब नहीं उठा रहे थे। सत्ता में विराजमान प्रधानमंत्री भी संविधान में मौजूद कमियों को रेखांकित करने लगे थे। एक प्रश्न यह भी खड़ा किया जा सकता है कि संविधान का राजनीतिक और दलीय उपयोग भी क्या तभी शुरू हुआ ? वही दौर है, जब कांग्रेस ने केरल की निर्वाचित सरकार को हटा दिया।

कांग्रेस अध्यक्ष इंदिरा गांधी थीं। जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे। केरल की ई. एम. एस. नंबूदिरीपाद सरकार दुनिया की पहली कम्युनिस्ट सरकार थी, जो निर्वाचन से सत्तारूढ़ हुई थी, जिसे मनमाने तरीके से हटाना एक बड़ी संवैधानिक दुर्घटना थी। प्रो. देवेंद्र स्वरूप ने उसे गहराई से समझा। उस पर साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' में एक शृंखला चलाई। जिसमें संविधान सभा के कई सदस्यों के विचार छपे। उस श्रृंखला के लेखों को पढ़कर जहाँ आश्चर्य होता है। वहीं संविधान निर्माण की प्रक्रिया के बारे में अनेक प्रश्न भी खड़े होते हैं। बहस का अर्थ ही है अनेक विचारों का प्रतिपादन । संविधान पर छिड़ी बहस इसका अपवाद कैसे हो सकती थी !

संविधान पर अनेक प्रश्न उस दौर में भी उठे जब कांग्रेस का केंद्र और राज्यों में वर्चस्व बना हुआ था। लेकिन गैर कांग्रेसवाद के दौर में जो प्रश्न उठे, उनकी प्रकृति भिन्न थी। विशेष रूप से संघ - राज्य संबंधों पर प्रश्न ज्यादा उठे। 1967 से जो दशक शुरू हुआ उसमें दल-बदल की समस्या चिंताजनक बन गई थी। जिस पर विचार के लिए वाई. बी. चह्वाण कमेटी बनी। यहाँ इसका उल्लेख करना प्रासंगिक है कि संविधान की रजत जयंती पर कांग्रेस अधिवेशन में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इसे दुर्योग ही कहेंगे, क्योंकि वे इमरजेंसी के दिन थे। इंदिरा गांधी की तानाशाही में देश के लोकतंत्र की दुर्दशा हो रही थी। कांग्रेस ने अपने अधिवेशन स्थल को ‘कामागाटामारू नगर' नाम दिया था। वहाँ जो प्रस्ताव पारित हुआ, उसमें माँग थी कि संविधान की पूरी समीक्षा हो, जिससे संविधान को जीवंत बनाया जा सके। उस प्रस्ताव के अनुसरण में अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने 26 फरवरी, 1976 को एक 12

सदस्यीय कमेटी बनाई। उसके अध्यक्ष सरदार स्वर्ण सिंह थे। उनकी रिपोर्ट जैसे ही आई कि विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति पी.वी. गजेंद्रगडकर ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को सलाह दी कि संविधान में संशोधन करने की यह विचार पद्धति उचित नहीं है। इसके लिए एक उच्चस्तरीय कमेटी बनाई जानी चाहिए, जिसमें संविधान विशेषज्ञ हों। लेकिन उनकी सलाह नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गई। स्वर्ण सिंह कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर 42वाँ संविधान संशोधन किया गया, जिसका न तो तब औचित्य था और न आज है। जिसमें और तो और, उद्देशिका में भी संशोधन कर दिया गया। शायद ही दुनिया के किसी लोकतांत्रिक देश के संविधान में ऐसा संशोधन किया गया होगा। संविधान का वह पुनर्लेखन था । संविधान में बड़ा उलटफेर कर दिया गया, जिसकी 22 में से 13 राज्यों की विधानसभाओं से पुष्टि कराई गई। आपातकाल का वह संविधान पर कहर था। जिसे लोकतंत्र की बहाली के बाद मोरारजी देसाई सरकार ने थोड़ा सुधारा। संविधान का वह एक अधूरा एजेंडा बना हुआ है।

संविधान से राज्य व्यवस्था बनती है। एक राजनीतिक प्रणाली उसे चलाती है। शुरू से ही यह प्रश्न रहा है और आज भी है कि हमारे लिए उपयुक्त राजनीतिक प्रणाली क्या होनी चाहिए। आमतौर पर यह तो मान लिया गया है कि संसदीय प्रणाली जो चल रही है, उसे सुधारा जाना चाहिए। इस पक्ष पर भी सबसे पहले देश का ध्यान खींचने का श्रेय जे. पी. को है। चुनाव सुधार का विषय उन्होंने उस समय उठाया, जब इंदिरा गांधी ने 1971 के चुनावों को बहुत खर्चीला बना दिया। चुनाव सुधार पर निरंतर चर्चा और अध्ययन का क्रम जारी है।

इस दिशा में दूसरा बड़ा कदम विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार ने उठाया था, जब दिनेश गोस्वामी कमेटी बनाई। तीसरा कदम 1998 में उठा, जब इंद्रजीत गुप्त कमेटी बनी। अटल बिहारी वाजपेयी की राजग सरकार ने संविधान समीक्षा इसलिए भी कराना जरूरी समझा, क्योंकि चुनाव - सुधार का संबंध कोई संविधान से अलग-थलग नहीं है। वह पहला आयोग था, जो किसी दलीय तकाजे के कारण नहीं बल्कि मूलत: संवैधानिक प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए गठित हुआ था।

संविधान समीक्षा की माँग पुरानी थी। स्वयं प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 26 अक्तूबर, 1980 को संविधान संबंधी चकित कर देनेवाला एक बयान दिया 'संविधान में हर कुछ आज प्रासंगिक नहीं है। संविधान पर एक राष्ट्रीय विमर्श की आवश्यकता है। इसलिए कि जिस शासन पद्धति में भारत है, क्या वह हमारे अनुकूल है ? संविधान निर्माताओं ने जो शासन प्रणाली दी, उसकी कोई समीक्षा अब तक नहीं हुई है। जहाँ संविधान की समीक्षा आवश्यक है, वहीं विपक्ष की भूमिका के बारे में भी सोचने की जरूरत है। विपक्ष की आंदोलनकारी राजनीति के ढंग और संदर्भ पर भी विचार होना चाहिए।' प्रधानमंत्री पद पर पुनः आसीन होने के बाद का उनका यह बयान राजनीतिक प्रणाली में परिवर्तन का एक संकेत समझा गया। अंग्रेजी के अखबार 'इंडियन एक्सप्रेस' ने उसे राष्ट्रपति प्रणाली लाने की दिशा में सोच-विचार माना। इंदिरा गांधी के बयान से विभिन्न स्तरों पर चर्चा चल पड़ी। अनेक गैर-सरकारी संगठनों ने संविधान समीक्षा पर गोष्ठियाँ कीं। यह माँग निरंतर की जाती रही कि संविधान पर विभिन्न पहलुओं से बातचीत होनी चाहिए। संविधान पर बहस तेज इस